वेदों की ऋषिकाएं

भारतीय संस्कृति में स्त्री की स्थिति

वेदों से अनुप्राणित भारतीय संस्कृति में स्त्री का स्थान, आदर और अधिकार की दृष्टि से, पुरूष से ऊपर है। हमारे देश के मानवधर्म के प्रथम प्रस्तोता मनु ने कहा है- "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता - जहां स्त्रियों का आदर सत्कार होगा, उनकी मर्यादा की रक्षा होगी, उनकी सुखसुविधा का उचित प्रबन्ध होगा, वहां दिव्य भाव प्रेरणा पनपेगी, और आसुरी भाव दबे रहेंगे।

इसी संदर्भ में श्रीराम ने स्त्री के जननीरूप के महत्व को प्रदर्शित करते हुए कहा था - "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" माता और मातृभूमि की गरिमा स्वर्ग से भी अधिक है।

आधुनिक पाश्चात्य संस्कृति के सदृश, भारतीय संस्कृति में, स्त्री जीविकार्जन की दृष्टि से पुरूष के समान या प्रतियोगी नहीं है, अपितु पूरक है। भारतीय मान्यता के अनुसार प्रत्येक पुरूष के अन्दर स्त्री और प्रत्येक नारी के अन्दर पुरूष छिपा है। इसलिये स्त्री को पुरूष की अर्धांगिनी माना गया है। हमारी संस्कृति के सब से बड़े देव "महादेव की कल्पना अर्धनारीश्वर रूप में की गई है। स्त्री के बिना पुरूष अधूरा है, और पुरूष के सहयोग के बिना स्त्री के लिये माता बन कर, अपना सर्वोत्तम कृतित्व प्रकट करना असंभव है।

भारतीय सभ्यता में आधार भूत वस्तु परस्पर सहयोग है। इससे सामंजस्य बढ़ता है, समाज में शान्ति रहती है। किन्तु आधुनिक सभ्यता में स्त्री पुरूष सम्बन्ध की व्याख्या करनेवाली आधार भूत वस्तु प्रतियोगिता है, जो अहंकार को उत्पन्न करके समाज को अशान्त बनाती है। निरूक्ताकार ने पृथक् रुप से स्त्री के पर्याय नही दिये हैं, क्योकि वैदिक मान्यता में स्त्री और पुरूष पूरक हैं, मिलकर ही पूर्ण बनते हैं। पृथक् रहकर दोनों अधूरे हैं।

वैदिक संस्कृति के अनुसार जीवन के दैनिक व्यवहार में, स्त्री और पुरूष दोनों के कर्तव्य और अधिकार तथा प्रतिष्ठा समान थे। दोनों को प्रत्येक क्षेत्र में प्रविष्ट होकर अपनी प्रतिभा प्रदर्शन की पूर्ण स्वतंन्त्रता थी। वेदमंत्रों के अर्थ का दर्शन करने, और अपने व्यवहार में उतार कर सदनुरूप आचरण करने वाले ऋषि कहलाते थे। स्त्रियां भी पुरूषोंके के समान मन्त्रों के अर्थ का दर्शन और उस ज्ञान को अपने आचरण द्वारा प्रकट करके ऋषिकाएं बनती थीं।

वेदमन्त्रों के कुल ऋषि लगभग ५२५ हैं। इस ऋषियों मे लगभग २१ ऋषिकाएं हैं। यद्यपि संख्या की दृष्टि से ये बहुत कम हैं, किन्तु इनके द्वारा दुष्ट मन्त्रों का ज्ञान बहुत महत्वपूर्ण हैं।

वेद मन्त्रों की ऋषिकाएं

ऋषिकाएं वे विदुषी व सदाचारिणी देवियाँ हैं, जो वेद मन्त्रों के अर्थो को जानकर, तदनुरुप अपना आचरण बनाती हैं, उनका यह आचरण ही दृष्टान्त द्वारा उपदेश का काम करता है।

इन ऋषिकाओं का दर्शन (ज्ञान तथा उपदेश) बहुत महत्वपूर्ण है। यदि इनके दृष्ट सूक्तों और मन्त्रों को पूर्ण रूप से आत्मसात् कर लिया जाए, मनुष्य और समाज का जीवन

सुचारुरुप से चल सकता है, सुविधा की दृष्टि से इन ऋषिकाओं को चार श्रेणियों में बांट सकते हैं।

१) काम (सृष्टि) विज्ञान विदुषी, २) ब्रहम्वादिनी - अध्यात्मोपदेशिका, ३) त्रिकालसत्य प्रदर्शिका, ४) संवाद सूक्तों मे समान रुप से प्रवक्ता.

काम विज्ञान विदुषी ऋषिकाएं

रोमशा १. ऋक १-१२६ सूक्त के ६ तथा ९ मन्त्रों की ऋषिका रोमशा अर्थात् शामास्त्री अपने भावुक भागीदार को संभोग के लिये आमन्त्रित करती हुई कहती है कि तू मुझे छोटा मत समझ, मैं पूर्ण यौवना हूँ।

लोपामुद्रा २. ऋक १-११९ सूक्त की ऋषिका लोपामुद्रा कामपूर्ति न होने से जिसकी मोद मुद्रा लोप हो गई है, अपने प्राक् संस्कारों के आधार पर संभोग को पाप समझने वाले पति अगस्त्य को समझाती है कि सृष्टि से प्रारम्भ से यह प्रक्रिया चली आर ही है। तू अपना और मेरा जीवन क्यों व्यर्थ गंवा रहा है। आयु के बढ़ने पर शरीर की शोभा और आकर्षण कम हो जाता है। अतः इस प्रक्रिया को अपना कर, हमें स्वयं आनन्दित होते हुए सृष्टि संचालन में विधाता का सहायक होना चाहिये। इस का देवता "रतिः" है।

शाश्वती : ३. ऋक ८-१-३४ की ऋषिका शाश्वती अंगिरसी - मानव में शाश्वत काल से रहनेवाली अंग अंग में इसका संचार करने वाली कामना (रति) शक्ति है। इस मन्त्र का देवता आसंग है। इस मन्त्र में - आसक्ति पूर्ण स्त्री के लिये सबसे अधिक काम्य और योग्य पुंव्यञ्जन है - इस शाश्वत सत्य का वर्णन है।

अपाला : ४. ८-९१ की ऋषिका आत्रेयी अपाला है। इस सूक्त के प्रारम्भ में सायण ने कथा दी है कि विवाहोपरान्त, अपाला के बाल उड़ गए थे, त्वाचा पर रोग था, और वह सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ थी। अतः पतिने उसे छोड़ दिया था। यह कथा तो श्रोतोओं में रोचकता उत्पन्न करके उनका मनोरंजन करने के लिए दी है वास्तव में इस सूक्त में प्रत्येक कन्या के लिये विवाह योग्य बन कर अपने पतिरुप इन्द्र (जितेन्द्रिय) को प्रसन्न करके स्वयं आनन्दित होने के उपाय रुप में सोमसवन (रजोरक्षण तथा शोधन) का उपदेश दिया है। यह सोमसवन - शरीर छिद्र (रथस्वश्व) त्वचा के रोग, अनिछिद्र (मनसःस्व) मन में कामना के अभाव को और युगछिद्र (शरीर और मन को जोड़ने वाली बुध्दि की कमी) को पूरा करके उसमें कामभावना को जागृत करके, इस अपाला कन्या को सूर्य सदृश तेजस्विनी तथा प्रस्तविका बना देता है। एक तरह से यह सूक्त (ब्रहम्चर्येण कन्यायुवानं विन्तत्ते पतिम) की भावना का प्रतिपादन करते हुए कन्याओं को ब्रहम्चर्य पालन का उपदेश देता है साथ ही यह संकेत है कि विवाह के बाद भी यदि कमी आ जीए तो उसे भी सोमसवन द्वारा दूर किया जा सकता है।

इन्द्राणी : ५. ऋक् १०-८६ के २ से ६, ९, १०, १५, से १८ मन्त्रों की ऋषिका इन्द्राणी है। वह अपने पति को कहती है कि तू कभी बन्दर की तरह चंचल होकर इधर उधर क्यों भागता फिरता है। तुझे मेरे से बेहतर सुख संभोग या आनन्द कहीं नहीं मिल सकता है। न मत् स्त्री सुमसत्तरा न सुमाशुतरा भुवत। न मत्प्रतिच्यवीयसी न सक्थ्युद्यमीयसी न सेशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या कपत्। सेदीशे यस्य रोमशं निषेदषी विजम्मते । १६ अपनी कमी का अनुभव कर और उसे दूर कर। सुख अपने अन्दर है। बाहर मत भटक।

उर्वशी : ६. ऋक् १०-९५ सक्त पुरुरवाः उर्वशी संवादसूक्त है। इसमें पति पत्नी संवाद रुप में यह दर्शाया गया है कि पत्नी पति की खुशामद और आभूषणों से संतुष्ट नही रह सकती। जब तक उसे काम द्वारा तृप्त नही किया जायेगा, वह सन्तुष्ट नहीं होगी। वह पति को छोड़ने को उद्यत हो जाएगी। पत्नी को अपनी अनुचारिणी बनाने के लिये आवश्यक है कि पति जितेन्द्रिय बने घृत का सेवन करे और पत्नी को वीर्यदान से तृप्त रक्खे।

सार्वकालिक तथा सार्वदर्शिक तथा द्रष्टी ऋषिकाएं

अदिति : १ : अदिति ऋषिका का ऋग्वेद मे ४-१८ एक सक्त है। स्वामी दयानन्द ने इस सूक्त का ऋषि वामदेव माना है। सातवलेकर द्वारा मुद्रित ऋग्वेद में कवेल ४-१८-९ एक मन्त्र की ऋषिका अदिति को माना है।

इस सूक्त में कुछ महत्वपूर्ण संकेत है।

१) जिस मनुष्य को विशेष कार्य करना हो, उसे परम्परा से चिपटे न रहकर नया मार्ग खोज लेना चाहिये।

२) कभी कभी बहुजन हिताय निषध्द मार्ग भी अपना लेना चाहिये। धनाम्बुवा राजपथे हि पिच्छिले कविदपुधैरप्यपथेन गम्यते ॥ २ ॥ श्रीहर्ष

निषिध्दमण्याचरणीयमापदि क्रिया सती नावति यत्र सर्वथा ॥ १ ॥

३) उस काल में भी योनिमार्ग के अतिरिक्त मार्ग से शल्यक्रिया द्वारा सन्तान उत्पन्न की जाती थी।

४) दरिद्रता और बुभुक्षापीड़ित अवस्था में किये जाने वाले पापों और अपराधों का विचार सहानुभूति पूर्वक करना चाहिये।

विश्ववारा : २ : ऋक् ५-२८ की ऋषिका विश्ववारा आत्रेयी है यह सदक्रिया शील बनी रहकर काम क्रोध लोभ आदि सभी पापरुप कर्मोका निवारण करने के कारण ही आत्रेयी विश्ववारा कहलाती है। इसे उषकाल भी माना जा सकता है।

यह पृथिवी के देव अग्नि और द्युलोक के देव आदित्य से प्रार्थना करती है कि - तुम अपने साधकों को महान् सौभाग्य प्राप्त कराओं अर्थात् उत्तम - धन, गृहस्था के समतुलित सुख, दो और सर्वविध शत्रुओं का विनाश करो २-३।

इस प्रकार यह ऋषिका उषःकाल से पूर्व उठकर, दैनिक नित्यकर्म करके के उपरान्त आजीविका कृत्यों में प्रवृत्त होने का उपदेश देती है। उषकाल में अग्नि और आदित्य के सम्यक् सेवन से जीवन को सुखी बनाने वाली सभी वरदान सुलभ हो जाते हैं।

इस प्रसंग मे ऋक् १०-१२ की चर्चा भी आवश्यक है क्योंकि विकल्प से इस सूक्त की ऋषिका "अदिति दाक्षायणी" भी मानी गई है।

इस सूक्त में निम्न मान्यताओं का वर्णन है-

क) उत्पत्ति और प्रलय का चक्र अनादि तथा अनन्त है। इनमें कौन पहले हुवा या कौन पीछे, ऐसा निर्णय करना संभव नहीं।

ख) देवयुग अर्थात् सृष्टि के प्रारम्भ में अव्यक्त (असत्) प्रकृति से व्यक्त भूतों तथा पदार्थो की उत्पत्ति होती है। उससे पूर्व सभी महाभूत (सलिले सुसंरब्धा अतिष्ठत) प्रकृति में लीन रहते हैं।

ग) अदिति से प्रारम्भ में प्रकृति, महान्, अहंकार और पंच तन्मात्राएं प्रादुर्भव होती है तत्पश्यात सृष्टि क्रम चल पड़ता है।

घ) जगत् की उत्पत्ति के बाद अमृत (जीवात्मा) से बंधे प्राणी (देव) प्रकट होते हैं।

"पूज्य गंगेश्वरानंद जी चतुर्थ स्मृति विशेषांक"

पाठकों,

हम वेद - प्रदीप मार्च १९९६ का अंक पूज्य गंगेश्वरानन्दजी के "चतुर्थ स्मृति विशेषांक" के रुप में प्रस्तुत करने जा रहे हैं। जिन सज्जनों को उनके दर्शन, वार्तालाप, आर्शीवाद पाने का सुअवसर मिला हो, वे अपने अनुभव वेद-प्रदीप के इस अंक के लिये भेज सकते हैं। जिनके पास पूज्य गंगेश्वरानन्द जी की कोई दुर्लभ विशेष तस्वीर या फोटो हो, तो हमारे पास अवश्य भेजें।

कृपया ध्यान रहे, हमें आपके लेख दि. १/११/१९९५ से पूर्व मिल जाने चाहिए।

धन्यवाद

आपका,

सम्पादक

इन्द्रसुनुषा वसुक्रपत्नी ३ : इन्दस्नुषा अथवा सुक्रपत्नी ऋषिका का केवल एक मन्त्र है, ऋक् १०-२८-१। इस मन्त्र का स्पष्ट संदेश है कि पुत्रवधू को अपने सास ससुर के खान पान तथा हर प्रकार की सुख सुविधा का पूरा ध्यान रखना चाहिये। ऐसा न करने से मानव समाज की व्यवस्था बिगड़ जाएगी यदि जवानी में पुत्रवधू अपने सास श्वसुर की देखभाल तथा सेवा नहीं करेगी, तो वार्धक्य में उसकी पुत्रवधू भी उसकी उपेक्षा करेगी।

इस उपदेश के आचरण के अभाव में भौतिकवाद में लिप्त सारा पश्चिम जगत् और पूर्वजगत् के अन्धानुकरण करने वाले आधुनिकतावादी नवधनिक दुःख भोग रहे हैं।

■ **मनोहर विद्यालंकार**, दिल्ली

(क्रमशः)

वेदों की ऋषिकाएं

भारतीय संस्कृति में स्त्री की स्थिति

(गतांक से आगे)

सावित्री सूर्या -

४. ऋग्वेद का १०-८५ सूक्त तथा अथर्ववेद का १४ काण्ड विवाह सूक्त है। इन सूक्तों की ऋषिका "सावित्री सूर्या" है। यह प्रसवसम्बन्धी ज्ञान की विदुषी, सूर्य के समान तेजस्विनी, ऐश्वर्य शालिनी और सर्वत्र प्रकाश उद्यम और सुख की प्रसारिका हैं।

मानव समाज को व्यवस्थित और संघर्ष शून्य बनाने के लिये विवाह प्रथा का प्रचलन अत्यन्त उपयोगी रहा है। इन सूक्तों में विवाह सम्बन्धी सभी पक्षों कर्तव्यों, व्यवहारों, परिस्थितियों की चर्चा हुई हैं। आदर्श पति और पत्नी का वर्णन है। संभावित समस्याओं का समाधान किया गया है। उनमें से कुछ प्रचलित प्रथाओं की यहां चर्चा की गई है।

१) गृहस्थ को सुचारू रूप से चलाने के लिये - सत्य और सुचिता पत्नी में, और सामर्थ्य, उत्पादकता तथा जीविकार्जन पति में विशेष रूप से इष्ट हैं। १ अ)

२) यदि पति पत्नी प्रसन्न और सन्तुष्ट हैं, तो मृत्युपर्यन्त उन्हें अपने बेटों, पोतों के साथ घर में रहना चाहिये । वानप्रस्थ और संन्यास लेना आवश्यक नहीं है। २२ अ.

३) वेद में तलाक की स्वीकृति नहीं है। पति पत्नी से १०० वर्ष तक जीवित रहने की कामना करता है। (प्र २ अ) किन्तु विधवा विवाह की स्वीकृति दी गई है। ऋक् १०-४०-२

४) विवाह की आयु निश्चित नहीं है। क्योंकि जलवायु के परिवर्तन के साथ वधू की कामना का समय बदलता रहता है। इसलिये वधू कामना की प्रबलता ही विवाह काल है।

५) विवाह में कन्या को दहेज देने का वर्णन है। यदि माता पिता में यह सामर्थ्य न हो तो कन्या को दिये गये ज्ञान और योग्यता को ही दहेज समझ लेना चाहिये।

६) वेद में चार पतियों की चर्चा है। वास्तव में यहाँ पति का अर्थ रक्षक है। कन्या का प्रथम रक्षक सोम (उत्पादक पिता) है। द्वितीय रक्षक गंधर्व (गांधरतीति गुरू) है। तृतीय रक्षक अग्नि (पाकशास्त्र, चिकित्साशास्त्र आदि व्यावहारिक ज्ञान का मार्ग दर्शन करने वाले) होते हैं। तदनन्तर चतुर्थ रक्षक मानव, जीवनसाथी पति बनता है। ऋक् १०-८५-४०

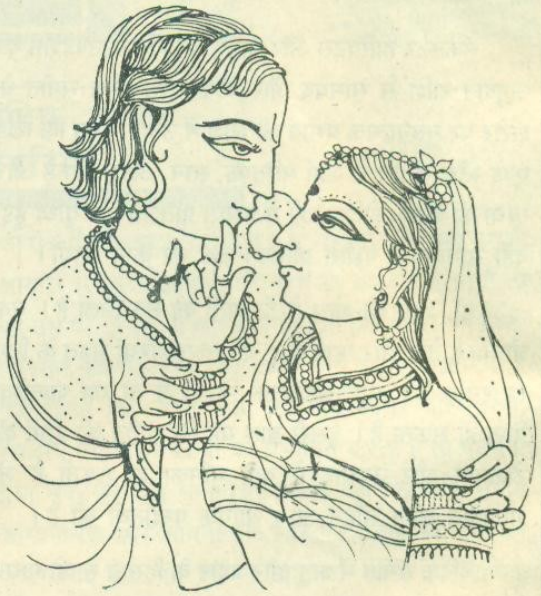

क) इसमे चार पतियों की चर्चा होने के कारण, वेद की विलोम संस्कृति वाले मोहम्मद, अनुयाईयों ने पति को ४ पत्नियाँ रखने का विधान कर दिया।

ख) दूसरा पति गुरू (गंधर्व) कहने के कारण, कुछ वामपन्थी सम्प्रदायों ने अपने अनुयाईयों की पत्नियों से प्रथम संभोग की प्रथा चालू कर दी।

ग) स्वामी दयानन्द ने इस मन्त्र के आधार पर नियोग का प्रतिपादन किया है।

७) युवक को परिपुष्ट होने के बाद अपने दूसरे माता पिता को चुनने का अर्थात् अपनी पत्नी को चुनने का अधिकार वेदानुमोदित हैं। पुत्र : पितरावृणीत पूषां । ऋक् ८५-१५

८) एक स्त्री के साथ अनेक पुरूषों के संभोग के वर्णन द्वारा (यस्यामुशन्तः प्रहाएम शेपम्)

क) एक पत्नी को कई पति रखने की आशा प्रतीत होती है।

अथवा

ख) समाज की आवश्यकता पूर्ति के लिये (वेश्या) संस्था का अनुमोदन प्रतीत होता है ।

९) पति के नपुंसक या मृत होने के बाद पत्नी सन्तान के लिये दो व्यक्तियों को देवर (द्वितीय वर) बना सकती है। इससे अधिक नहीं। ऋक् ८५-९-१-११९-५-४-४३-६

१०) पत्नी का कर्तव्य है कि वह सारे परिवार का कल्याण चाहती हुई, और सब को सुख व सुविधा प्रदान करती हुई साम्राज्ञी बनकर विराजमान हो। ऋक् ४६ अथर्व - १४-२-६४

५) ऋक् १०-१०-७ सूक्त के ऋषि दिव्य अंगिरस के साथ विकल्प से "दक्षिणा प्राचापत्या को भी ऋषिका माना गया है। लोकहित के निमित्त दान दक्षिणा देने से गृहपत्नी का नाम ही "दक्षिणा प्राजापत्या" पड़ जाता है। इस सूक्त में दान दक्षिणा की ऐसी महिमा दिखाई है, जो सार्वकालिक तथा सार्वदेशिक है दान के महत्व और दक्षिणा के परिणामों से कोई इन्कार नहीं कर सकता। विशेष रूप से निम्न संकेत दिये हैं -

क) दूसरों के हितों की रक्षा करने वाले निरोग और दीर्घायु होते हैं ।२

ख) राष्ट्र के हित के लिये काम करने वाले संगठनों में दान देनेवालों की सम्पत्ति की सप्त गुणित वृध्दि होती है। ४

ग) प्रभूत मात्रा में दान देने वालों को सर्वत्र अग्रिम पंक्ति में स्थान मिलता है ।५

घ) "सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति" का सिध्दान्त इसी सूक्त के आधार पर निर्धारित हुवा है।

ड) दानों मे अन्न का दान श्रेष्ठ माना गया है। ९-९

च) दानियों को सुन्दर पत्नी मिलती है, उनका गृहस्थाश्रम सुख से व्यतीत होता है । १०

छ) दानियों की देव रक्षा करते हैं । वे अपने शत्रुओं को सदा पराजित करते हैं । ११

रात्रि : - ऋक् सूक्त १०-१२ "कुशिक सौभर" के साथ विकल्प से "रात्रि भरिद्वाजी" ऋषिका मानी गई है। इस से सूक्त की देवता भी रात्रि है। हल को चलाने वाला "कुशिक" अपने अन्दर शक्ति को भरने के कारण "सोभर" कहलाता है दिन भर कार्य करने से थके हुए प्राणी में, रात्रि विश्राम द्वारा पुनः शक्ति भर देने के कारण "भारद्वाजी" कहलाती है। यह सूक्त निम्न महत्वपूर्ण निर्देश व प्रेरणाएं देता है -

क) सबको दिन में श्रम और रात्रि में विश्राम करना चाहिये।

ख) श्रम या संघर्षसे उत्पन्न शारीरिक और मानसिक सब न्यूनताओं को दूर करने के लिये रात्रि सब के साथ समान व्यवहार करती है।

ग) रात्रि में सबको पक्षियों की तरह विश्राम करना चाहिये।

घ) रात्रि देवता से प्रार्थना है कि वह हिंसक जन्तुओं, चोर उचक्कों को हम से दूर रख कर रात्रि को सुतरा बना दे।

ऋक १०-१५१ की ऋषिका श्रध्दा कामायनी तथा देवता श्रध्दा है। यह ऋषिका श्रध्दा द्वारा अपनी कामनाओं को अयन (मार्ग) ढूँढने से कामायनी श्रध्दा बन गई है। जिसे हम श्रत् (सत्यं) समझते हैं, उसे अपने जीवन में धारण करने से श्रध्दा या श्रध्दावान् बनते हैं।

जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिये श्रध्दा अनिवार्य है। श्रध्दा से संकल्प जागृत होता है। श्रध्दा द्वारा मनुष्य भाग्य से शीर्ष पर पहुचता है ।१

श्रध्दा से जीवन में नये नये मार्ग प्रकट होते हैं २-३ श्रध्दा से धन और जनता के हृदयों में निवास सुलभ होता है। ४-५ अतः श्रध्दा को अपनी आत्मा में सर्वदा धारण किये रहना चाहिये।

इन्द्रमातर :- ऋक् १०-१५३ की ऋषिका - दिव्य भावों को जन्म देनेवाली, तथादेवों (इन्द्रियों) के राजा (मन) को इन्द्र बनाने वाली "देवजामयः इन्द्रमातर : " है।

वे जानती हैं कि - काम क्रोधादि वृत्रासरों का वध तथा स्वयं और समाज में सुखों की वर्षा करने में समर्थ बनता है इसलिये अपनी सन्तान को देव और इन्द्र बनाना चाहने वाली माताएं, परमेश्वर के गुणवान और पति के वीर्य का सेवन करती हुई, अपने पुत्र को जन्म से ही इन्द्र बनाने के प्रयत्न में जुट जाती हैं। माता के प्रयत्न के बिना पुत्र देव या इन्द्र नहीं बन सकता है।

यमी (मृत्यु) : ऋक् १०-१५४ सूक्त की ऋषिका यमी वैवस्वती है यह सृष्टि के वर्तन का वर्णन करते हुए कहती है कुछ लोग शान्ति, दीप्ति और माधुर्य की उपासना करते हैं। इन्ही में से कुछ लोग तपस्या के द्वारा पापकर्मो और पापियों से अगम्य हो जाते हैं। कुछ लोग मानव कल्याण और धर्म प्रसार के लिये संघर्ष करते हुये अपने प्राणों की बलि दे देते हैं। और कुछ लोग समाज और राष्ट्र के निमित्त नाना रूपों में प्रभूत्त धन का नियोजन करते हैं।

जो उत्पन्न हुआ है. उसे मरना अवश्य है। इसी अनुसार आज हमसे वियुक्त हुए व्यक्ति के लिये प्रार्थना करते हैं कि वह ऊपर वर्णित श्रेणियों द्वारा प्राप्त होने वाले किसी - लोक को प्राप्त करें - परिस्थितियों मे उत्पन्न हों । किन्तु यह तभी संभव है जब उसने

किसी प्रकार के अन्धकार या अभाव को दूर करने के प्रयत्न में अपने जीवन को समुधंत व संयम रक्खा होगा। पू. अत=इस मृत व्यक्ति की सद्गति की प्रार्थना करते हुए, हमें भी भविष्य में अपने जीवन को संयत करके किसी प्रकार के अन्धकार या अभाव को दूर करने का प्रण लेना चाहिये।

शची : १० : ऋक् १०-१५९ सूक्त की ऋषिका शची पौलोमी है। यह सूक्त भी वागाम्भृणी सूक्त की तरह अपने महत्व का प्रदर्शन करते हुए, मानव में उत्पन्न हताशा और निराशा को दूर करके, आत्मविश्वास, उत्साह और सामर्थ्य को जागृत करने वाला आत्मस्तुति परक सूक्त है।

शची का अर्थ है - प्रजा, वाणी और कर्म । अतः इन तीनों का जीवन में समन्वय करने वाली शची कहलाची है। पुल (महत्वे) महत्व - आत्म सम्मान की रक्षा करने वाले पुलोम की पुत्री पुलोमजाही राची बन कर अपने गृहस्थ समाज और राष्ट्र में उत्साह और आत्म विश्वास की भावना भर कर उन्हें हन्ता, दुष्ट बिना शक्त और विघ्न बाधाओं का विजेता बनाती है। प्रतिदिन सूर्योदय के साथ नये उल्लास के साथ बृहत्तर भाग्योदय के लिये प्रवृत्त होकर अपने पति पुत्र और दुहिता में भी इन्ही भावों का संचार करती रहती है।

सार्पराज्ञी : ११) - सर्पणशील और दीप्त सूर्य सदृश पिण्डों के ज्ञान को प्राप्त करके, उस ज्ञान का अपने आचरण द्वारा उपदेश करने वाली ऋषिका सार्वराज्ञी द्वारा दुष्ट ऋक सूक्त १०-१८९ के चारों वेदों में उच्चरित होने से ही स्पष्ट है कि इस सूक्त में उपदिष्ट ज्ञान बहुत महत्वपूर्ण है। इसका देवता आत्मा सूर्योवा और छन्द गायत्री भी इस सूक्त की महत्ता को प्रदर्शित करते हैं। इस सूक्त की मान्यताए विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्ध रखने के साथ - साथ महत्वपूर्ण तथा विविधता पूर्ण है।

क) - महान परमात्मा अथवा उसका प्रतिनिधि सूर्य जन्म से लेकर मृत्युपर्यत्न प्राणी के जीवन में प्रकाश और सुख का संचार करता रहता है।

ख) नाना रंग रूप वाला पृथ्वीलोक, अन्तरिक्ष में सूर्य की ओर प्रयाण करता हुआ अपनी धुरी पर परिक्रमा करता रहता है।

ग) जब तक जीवात्मा शरीर में आश्रय लिये रहता है, तभी सत वाक् आदि इन्द्रियाँ दिन के तीस मुहूर्तो में विराजमान होकर अपने कार्य करती हैं।

(क्रमशः)

■ **मनोहर विद्यालंकार** दिल्ली

वेदों की ऋषिकाएँ

(गतांक से आगे)

ब्रम्हवादिनी ऋषिकाएं अध्यात्म (परमात्मा, जीवात्मा, मन तथा शरीर) सम्बन्धी ज्ञान का दर्शन करती हैं, उसे अपने जीवन का अंग बनाती हैं। वाणी से उपदेश के साथ उनका आचरण भी उस दर्शन की संपुष्टि करता है, अत:उनका उपदेश अधिक कारगर (सफल) होता है।

सिकता - १) ऋक ९-८६ के ११ से २० मन्त्र तक १० मन्त्रों की ऋषिका सिकतानिवावरी है और न केवल इस सूक्त का अपितु सारे मण्डल का देवता सोम है। यास्क ने सिकता को ''कस् विकस ने'' धातु से निष्पन्न माना है। निवावरी को नि १-११-७ में निवारान् (निवारणीयान) न्यवृणीत इति, यह व्युत्पत्ति की है। शतपथ कारने १-१-१-११ में सिकता: का अर्थ रेत: किया है। इस तरह अपना विकास चाहने वाली, काम क्रोध आदि का निवारण करके रेतसे (सोम) का सिंचन करने वाली ऋषिका ''सिकता निवावरी'' बनती है या कहाती है।

सोम का अर्थ सत्-ओम भी है। और वीर्य भी है। सोम परमात्मा आनन्दमय है, अत: सोम की रक्षा करके सोम सख़ा बनने वालों को ''महि शर्म यच्छति १५'' संभोग व्दारा बहिर्निर्गमन करने वालों को सुत प्रदान करना है, अन्तर्गमन व्दारा अध्वरिता बनने वालों को मानसिक भोजन, सामर्थ्य और माधुर्य करता है **(क्षुभ व्दाजवन्मधूमत्सुवीर्यम्। इन्द्रस्य हार्दि अविशत्।** १८,१९)

सोम की रक्षा परमावश्यक है। संयम सोम सभी शत्रुओंको अपने वश में कर लेता है। (विश्वा अमि संयाति संयत: १५) जितेन्द्रिय व्यक्ति का गति व्दारा दुर्गणों और दुष्टों का विनाश करने वाले ''वायु'' से सख्य भाव कराने के लिये त्रिलोकी को तरानेवाले त्रित के नाम को सार्थ के रुप में प्रकट करता है, और मधु की वर्षा से सींच देता है **(त्रितस्य नाम जनयन्मधुक्षरदिन्द्रस्य वायो: सख्यायकर्तवे।** २०)

सुओम् ''षुप्रसवैश्यर्ययो:'' उत्पादक सोम=वीर्य। सत् + ओम् = त्रिकालसत् ब्रहम् = सोम। ओम् तत्सदिति निर्देशी ब्रहमण स्त्रिविध: स्मृत:। गीता इन्दु = सोम परमात्मा अपने सखा इन्द्र की संगत प्रार्थना को कभी ठुकराता नहीं है। उसके घर में अवश्य पहुंच कर उसकी सहायता करता है क्योंकि सहायता करने के उसके पास सैंकड़ो मार्ग हैं। **प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतं सख़ासख्युर्न प्रमिनाति संगिरम्।** १६'' सिकता निवावरी ऋषिका के निम्न निष्कर्ष हैं।

क :- सोंम-दु:खों का हरण करने वाला हरि अपने मित्र के प्रत्येक सदन में बैठा हुवा है।

ख :- वह सर्वज्ञतथा सर्व शक्तिमान् है, सब का हितैषी है, सबको पवित्र रखना चाहता है।

ग :- उसके गुणों को अपना कर उसके मित्र बनने का प्रयत्न करो, और निश्चिन्त होकर अपने कर्तव्य कर्म करते जाओ। वह संगत प्रार्थना को कभी अस्वीकार नहीं करता है।

घ :- मननशील स्तोता ही वास्तव में सम्यक स्तुति कर पाते हैं। वह स्तोताओं के हृदय में प्रवेश किये रहता है, अपने नाम को ओझल नहीं होने देता। अत: वे सदा आनन्द विभोर अत: ऋकृट-४८-३ में काण्व प्रगाथ अपना अनुभव बताता हूँ।

अपाम सोममृती अभूममागन्म ज्योतिरविदाम देवान्।
काश्वप्यौ शिखण्डिन्यौ अप्सरसौ

र :- ऋक ९-१०४ सूक्त की ऋषिकाँए युग्म ऋषिकाए हैं। विकल्प से इस सुक्त के पर्वत नारदा काण्वी ऋषि भी माने गये हैं। इन दोनों का भाव एक सा है। नारा: = प्रजा: से उत्पन्न सामान्य जन, अपने साथियों के अज्ञान को नष्ट करके उन्हें (नारदायति दैव शोधते) शुध्द करनेवाला नारद, उन्नति के शिखर (पर्वत) पर पहुचने वाला पर्वत दोनों मिलकर काम करते हैं। इसी प्रकार कायपी पृथ्वी - निम्न स्तर की प्रजा में उत्पन्न होते हुए भी अप्सर सौ अप्सकर्मसु सरत: कर्मो में व्याप्त रहकर शिखर तक पहुचने वाली - शिख़रण्डिन्यौ ऋषिकाएं है। इस सूक्त का देवता ''पवमान सोम'' हैं।

ये ऋषिकाएं जमीन से उठकर द्युलोक के शिख़र तक पहुचने के लिये निम्न साधनों का निर्देश करती हैं।

१. शान्ति और आनन्द के देवता सोम का सदा गायन करो, और उसे स्मरण रक्खो।

२. यज्ञों व्दारा अपने जीवन को बालक की तरह सरल और आकर्षक बनाओ।

३. निर्माण और ज्ञान प्राप्ति के कार्यो के साथ प्राण साधना व्दारा अपने जीवन में दिव्यगुणों और उल्लास को भरकर शारीरिक और मानसिक दोनो बल प्राप्त करो तदनन्तर प्रार्थना करो तो वह उस प्रार्थना को अवश्यपूर्ण करेगा।

हे आनन्द के स्वामिन् तथा रक्षक सोम ! आप देवप्सरा: = दिव्य स्वरुप हैं, और मै आपका सखा (समान ख्यानल) बनना चाहता हूँ, अत: = वेद वाणियों के स्वाध्याय व्दारा मैं आपके स्वरुप से अपने को सुवासित करता हूँ। अत: आप मेरे श्रेष्ठ मार्गदर्शक बने रहो। और मुझ में से निष्पीड़न, विदोहन, दुंभात और पापवृत्तियों को अपने प्रहार व्दारा दूर कर दो। मातृनामा अथर्व २-२, ४-२०, ८-६

अथर्व २-२ में ब्रह्ममुनि ने मातृनामा का अर्थ जगन्निर्माता परमात्मा को नमन करने वाला ऋषि माना है। इस सूक्त में भुवन पति दिव्य देव को जो अव्दितीय हैं, उसे ही स्तुत्य तथा प्रार्थनीय मानकर ''नमस्ते'' ''अस्तु'' कहा गया है। सूक्त ४-२० का ऋषि और देवता दोनों ही मातृनामा हैं। किन्तु इस सूक्त में मातृनामा देवता को ''देवि औषधे'' कह कर सम्बोधित किया है। सूक्त ८-६ का ऋषि और देवता दोनों ही मातृनामा हैं। इस सूक्त में मातृनामा को औषधि कह करके संबोधित किया है। अत: मातृनामा को ऋषिका ही मानना चाहिये। इस सूक्त में बज औ सर्षप औषधियों की चर्चा है। इस ऋषिका को संक्षेप में निम्न संकेत हैं।

१ :- उष्णता को धारण करने वाले, और उसका प्रयोग करके दुष्टों, रोगों, और दुर्गुणों को दूर करने वाले सभी तत्व परमात्मा सूर्य, राजा और सरसों ''औषधि'' कहलाते हैं। इनका प्रयोग और सेवन सदा, विशेष रुप से स्त्रियों के लिये लाभकर होता है ।

२ :- ये दोष और दुर्गुण तथा दोष इन औषधियों से, विशेष रुप से सूर्य सेवन से वैसे ही दूर रहते हैं, जैसे पुत्र वधू श्वसुर से दूर (परे) रहती है।

३ :- घोषा का क्षीवती ऋक् १०-३९ तथा ४० की ऋषिका हैं। इन दोनों सूक्तों का देवता अश्विनौं (प्राणापान अथवा मिषक् और शल्य चिकित्सक) हैं। इन दोनों सूक्तों में सभी प्रकार से रोगियों को निरोग करने की चर्चा है।

ब्रम्हवादिनी घोषा के निष्कर्ष

क :- प्राण साधना व्दारा सभी रोगों से बचा जा सकता है, और उन्हें दूर किया जा सकता है।

ख :- ब्रहमूवादिनी को भी जगत में रहते हुए गृहस्थ पालन अथतिपतिसुख और पुत्र सुख प्राप्त करने का अधिकार है एतदर्थ उसे भी गृहस्थ के कर्तव्य पालना चाहिये।

ग :- जो युगल प्राण साधना करते हुए अपने साथी के साथ संयम से रहते हैं उन्हें किसी प्रकार का दुरित या भय नहीं सताता। उनका जीवन शान्त होता है। वे परस्पर कल्याण करते हुए, संतान सुख भोगते हैं।

घ. इसकी घोषणा है कि कमर कस कर काम करनेवाला सदा स्वस्थ रहता है।

(क्रमश:)

❑ श्री.मनोहर विद्यालंकार, दिल्ली

वेदों की ऋषिकाएँ

(गतांक से आगे)

जुहू: (४) जुहू: ब्रह्म जाया ऋक् १०-१०९ की ऋषिका है। विश्वे देवा: इसके देवता हैं। ब्रम्ह की जाया पुत्री वेदवाणी का उपदेश करने वाली जुहू: (जुहृति उपदिशतिं) है। अत: अर्वाचीन साहित्य में 'जुहू' को बृहस्पतिकी पत्नी कल्पित कर लिया गया।

ब्रह्मवादिनी जुहू के निष्कर्ष निम्न हैं -

क. बृहस्पति ब्रम्हचारी ही जुहू को पत्नी बनाने का अधिकारी है। अर्थात् समान गुण, कर्म, स्वभाव वालों का ही विवाह होना चाहिये। ५.

ख. विवाह में बंधन से पूर्व, वर और कन्या को स्वयं देख और परख लेना चाहिये। केवल दूत पर निर्भर रहना उचित नहीं। ३.

ग. विवाह के बाद छोड़ना या दु:ख देना अनैतिक है। ऐसा करने पर उसके भयंकर परिणाम होने की संभावना है। ४.

घ. विवाह के बाद यदि उसकन्या में कोई दोष या कमी दीखती है, तो उसे पूरा करने का उत्तरदायिन्त्व पति का है। इस उत्तरदायिन्त्व का निर्वाह ही पति को यशस्वी बनाता है।

बागाम्मृणी

अक् १०-१२५ (अथर्व ४-३०) की ऋषिका बागाम्भृणी = महत्वपूर्ण घोषणा करने वाली वाक् वेदमाता, आत्मा (परमात्मा) की स्तुति=वर्णन कर रही है। (अम्मृण: महन्नाय नि. ३-३ अमति बिभर्तिच)

ब्रम्हवादिनी बागाम्मृणी ऋषिका व्दारा परमात्मा के साथ अव्दैत मान कर यह वर्णन किया गया है। वेद माताही पारमेश्वरी जगन्माता है। वह कहती हैं कि -

क. सब देवताओं या दिव्यभावों को जगत् में मैं ही धारण किये हुवे हूँ।

ख. मैं ही प्राणियों को उन के कर्मानुसार ब्रम्हा, ऋषि, सुमेधा= विप्र, १-२-३ करने वाले यजमानों का निर्माण करती हूं। ५-६-२

ग. मैं ही मनुष्यों को समद (अहंकारी) बनाती हूं और तदनन्तर संग्रोमों की योजना करके पृथ्वी का भार हलका करती हूं। ६

घ. मैं ही समाज, राष्ट्र और ब्रह्मांड का निर्माण और संगमन करते हुए सभी भुवनों (प्राणीमात्र) में व्याप्त होकर उनका भरण पोषण करती हूं। २-४-१

इ. मैं ही संपूर्ण जगत् के रुप में दिखाई देती हूं। इतना ही नहीं, इस द्यु और पृथ्वी से परे से परे: और इन के प्रकट होने से पूर्व, तथा इन के प्रलय होने के बाद मैं ही मैं रहती हूँ।

गोघा ऋषिक– अक् १-१३४-६, १ मन्त्रों की ऋषिका गोधा ब्रह्मवादिनी है। गौ-वेदवाणी को धारण करने वाली गोधा ऋषिकाके साथइससूक्त के अन्य मन्त्रों को ऋषि मांधाता (आत्मज्ञानी=मन्तुम:अहमात्मा (गीता) है।

इस सूक्त का सार यह है - ज्ञान की तरह संयम भी शक्ति प्रदान करता है। जैसे बानर अगले पांव से शाखा को पकड़ कर पत्ते खाता है, वैसे ही मानव को प्रथम वय में ज्ञान और संयमरुपी पांवो द्वारा अपने जीवन को दृढ़ता से पकड़ कर, गृहस्थ को भोगना चाहिये। अपना जीवनमन्त्रों के अनुसार जीना चाहिये। उसमें न कुछ मिलाना चाहिये, नही कुछ घटाना चाहिये। क्योकि वेदमाता सब के लिये केवल कल्याण चाहती है।

नद्य : संवाद सूक्तों में प्राय: एक पुरुष और एक नारी होती है। जो वाक्य या मन्त्र का उच्चारण करे, वह ऋषिका; और जिसके प्रति कथन किया जा रहा है, वह देवता। इन संवाद सूक्तों के आधार पर ही निम्न सिद्धांत बना प्रतीत होता है। यस्यं वाक्यं सत्मृषि, यत्तेनोच्यते सा देवता।

ऋक् ३-३३ सूक्त में नद्य: और विश्वामित्र का संवाद है। नद्य: ऋषिकाएं है। प्राकृतिक नदियों और विश्वामित्र के संवाद की कुछ संगति नहीं लगती अत: नदियां - इन्द्रियप्रवाह और विश्वामित्र संकल्पात्मक मन है। यह इन का संवाद है आत्मा का प्रतिनिधि बन कर मन इन्द्रियों से कहता है, कि तुम मेरे कहने में रहो, जिससे मैं अपने दूर के लक्ष्य (परमात्म प्राप्ति) तक पहुच सकूँ। क्योंकि सामान्यतया ये इन्द्रिय प्रवाह रुप नदियां (विपाद्) विविध मार्गो मे भटकाती हैं, और शुतुडी शीघ्र ही व्यथितकर देती हैं। यह विश्वामित्र परमात्मा से संश्लिष्ट करने वाले कुशिक का पुत्र बनकर, अपनी वृध्दि और रक्षा के लिये मनीषा की कामना करता है। परिणामत: ये इन्द्रिय प्रवाह नत होकर उस के वश में हो जाते हैं। अपना भरण करने वाले मनीषी भरत इन प्रवाहों को तैर जाते हैं, और अपने लक्ष्य पर पहुंच जाते हैं। क्यों कि उनमें लक्ष्य पर पहुंचने के लिये उत्साह है, वे योजनाएं बनाकर दुष्कर्मों और पापों से बचते हैं, अपने लक्ष्य को प्राप्त कर के सुख और समृध्दि प्राप्त करते हैं।

(क्रमश:)

मनोहर विद्यालंकार, दिल्ली

वेदों की ऋषिकाएँ

(गतांक से आगे)

यमी

ऋक् १०/१० यम यमी सूक्त है। इस सूक्त का अर्थ करते हुए किसीने इन्हें, भाई बहन, किसी ने पति पत्नी, किसी ने रात दिन माना है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि वास्तव में ये एक गुरु के पास शिक्षा पाने वाले युवक युवति हैं। युवति में काम उब्दुध्द हो गया है, युवक को उसके प्रति आसक्ति नहीं है। युवति गर्भ का अर्थ गुरुगृहवास करके उसे अपना पति बनाना चाहती है। और वह गर्भ का अर्थ मातृगर्भ करके भाई बहन सम्बन्ध को पाप कह कर निषेध करता है।

ऐसा सदा से होता आता है। शिक्षा काल में साथ रह कर आकर्षित होने के कारण बहुत युवक युवतियां दाम्पत्यजीवन में प्रवेश कर जाते हैं। और बहुत बार ऐसा होता है कि एक साथी में दूसरे के प्रति रुची और कामना नहीं होती तो वह सम्प उपाय अपना कर भाई बहन की युक्ति देकर इन्कार कर देता है।

इन्द्राणी

३. ऋक् १०-८६ सूक्त में इन्द्राणी, इन्द्र और इन्द्रसुत वृषाकपि तीनों का संवाद है। इस सूक्त की टेक है 'विावएमादिन्द्र उत्तरः' प्रभु सर्वोत्कृष्ट तथा सर्वोच्च हैं। अतः उनकी सन्तान मानव को अपने किसी गुण या प्राप्ति पर अभिमान नहीं करना चाहिये, और नाही किसी मानव को अन्यकिसी मानव को परमेश्वर मान कर स्तुति करनी चाहिये।

मन को चंचल रखकर इतस्ततः वीर्यसिंचन करने वाला सामान्य मानव वृषा कपि है। किन्तु वही अर्थ=जितेन्द्रिय (स्वामी) बनकर, प्रभुके समान गुणों को धारण करके मत्सरवा बन जाता है। भक्ति सुखकी वर्षा से सिंचित होकर पाप शत्रुओं को कंपा देता है।

इन्द्राणी स्त्रियों में सर्वोत्तम हैं, वह मरणपोषण तथा रमण को भली भांति जानती है। यदि पति और पत्नी इन्द्र और इन्द्राणी बनजाएं, तो गृहस्थ स्वतः स्वर्ग बन जाएगा। इन्द्राणी के वर्णन में आदर्श, माता पत्नी और पुत्री तीनों की झलक मिलती है।

वेद के प्रायः सभी मन्त्रों का आध्यात्मिक या परमात्म परम अर्थ किया जा सकता है, और किया जाता है, किन्तु जब उन मन्त्रों

का सीधा अर्थ व्यवहार परक दीखता हो तो उनकी उपेक्षा उचित नहीं। यदि ऋषि को यहपक्ष न दिखाना होता तो वह व्दयर्थक शब्दों का प्रयोग क्यों करता।

इस सूक्त में कुछ ऐसे शब्द हैं, जिनका प्रयोग रमण और संभोग में किया जाता है। उस दिशा में भी मनन किया जाए तो काम सम्बन्धी बहुत से तथ्यों का सा मिलता है।

इन्द्राणी (शची) इन्द्र की पत्नी है। शची का अर्थ प्रज्ञा, कर्म वाकृतीनों है। इस लिये देवों की पत्नियों को उनकी शक्ति भी माना जा सकृता है (अथर्व १३-४-४१)

उर्वशी

४. ऋक् १०-९५ पुरुरवा उर्वशी संवाद है। इसकी ऋषिका उर्वशी है। इस सूक्त का आध्यात्मिक अर्थ करने वालों ने पुरुरवा काअर्थ ब्रम्ह और उर्वशी का अर्थ बुध्दि किया है। नग्न (शुध्द) ब्रम्ह के दर्शन होते ही बुध्दि लुप्त हो जाती है, और दोमेष काम क्रोध के हटते ही मन लुप्त हो जाता है।

अधि दैविक अर्थ करते हुए पुरुरवा मेघ है, और उर्वशी विद्युता दो मेष, मेष राशि स्थित चन्द्र व्दारा निर्मित दोपक्ष है। जब तक मेघ जल (धृत) पूर्ण रहता है, तभी तक विद्युत (उर्वशी) उसके साथ रहती है। मेष राशि के बाद वृष राशि आने पर मेघ (पुरुखा) धृत (जब) शून्य होजाता है, तब विद्युत कभी नहीं चमकती - उसे छोड़ कर चली जाती है। किन्तु व्यवहारिक दृष्टि से (आद्यिभौतिक अर्थ में) ऐलपुरुखा - विलासी-कामासक्त पुरुष है, और उर्वशी अत्यन्त कामिनी स्त्री है। उसकी शर्तें है - (१) प्रतिदिन धृत (वीर्य) सेवन है (२) दोमेष सदा साथ रहेंगे; मेष शृंगी और एला, दोनों ही काम वर्धन हैं। गंधर्वा ने उसे स्थाली दी, पर उसने फेंक दिया। जब पुन: लेने गया तो वहां उसे शमी और उश्वित्थ की शाखाए मिलीये दोनों औषधियां हैं पुस्त्व और प्रजनन की (अथर्व ६-११-१)

इस सूक्त में काम सम्बन्धी निम्न संकेत मिलते हैं

(१) नवविवाहित युवक युवतियों में काम बहुत प्रबल होता है। वे दिन में तीन सीन बार तक संयोग करते हैं। इस प्रकार की अति दु:खदायी होती है।

(२) पत्नी को आसक्त रखने के लिये पति को जितेन्द्रिय होकर, धृत सेवन करते हुए, अपनी पत्नी को संभोग व्दारा धृत दान देकर सन्तुष्ट रखना चाहिये.

(३) पत्नी केवल खुशामद, आभूषण और धन से सन्तुष्ट नहीं हो सकती है।

(४) अप्र दृष्ट नग्न पुरुष को देखकर कामिनी स्त्री को वितृष्णा होती है। अत:शयनकक्ष के अतिरिक्त पुरुष को स्त्री के सन्मुख पूर्ण नग्न कभी नहीं दीखना चाहिये।

सरमा

५. ऋक् १०-१०८ सरमा (देवशुनी) पणि संवाद है। इस सूक्त का सार यह है कि इन्द्र की गायों (इन्द्रियों) को पाणिजन (सन्मार्ग को त्यागकर अपने लक्ष्य को सिध्द करने वाले असुरों व्यवहार कुशल लोगों ने अपने वश में कर लिया। इन्द्र देव के गुरु बृहस्पति ने (ऋतंमरापज्ञाने) सरमा अवचेतनमन में दबी हुई ऋृतकी अन्तर्वृत्ति को उन गायों इन्द्रियों का पता करने और असुरों के चंगुल से मुक्त कराने को भेजा। असुरों ने सरमा को डराया भी और प्रलोभन भी दिया। सरमा ने उन्हें जो उत्तर दिया - मैं तुम्हारी बातों में आकर भाई बहन के रिश्ते का लिहाज करनेवाली, अथवा अन्य किसी प्रलोभन में आनेवाली नहीं हूँ। और न हीं तुम्हारी धमकियों से डरनेवाली हुँ। क्योंकि स्वामी इन्द्र अजेय है, वह सब को पराजित कर देने में समर्थ है।

ऋृत का सेवन करते हुए अपने लक्ष्य को प्राप्त करने वाले के लिये, वह उत्तर स्वर्णिम और सदा आदरणीय है। ऐसे लोग ही समाज और राष्ट्र का कल्याण कर सकते हैं।

श्री अरविन्द ने इस सूक्त को बहुत महत्व दिया है। इसका आध्यात्मिक अर्थ करते हुए वेद के शब्दों को न केवल यौगिक मानने पर बल दिया है, अपितु एक कदम आगे बढ़कर वेद शब्दों के प्रतीकार्थ करने का आग्रह किया है।

गौ को सरल निर्मल ज्ञान का सरमा को अवचेतन स्थित अन्तर्ज्ञान का अश्व को शक्ति और सामर्थ्यका, सूर्य को दिव्य प्रकाश उषा को दिव्य ज्योति का और सोम को आनन्द तथा अमृतत्व का प्रतीक तथा आधिपति माना है।

मनुष्य के जीवन की, यश, यात्रा और युध्द का रुपक मानकर व्याख्या करने का प्रयत्न किया गया है। यश के रुपक में जीवात्मा को यजमान, हृदयको बेदि, दिव्य संकल्परुप अग्नि को पुरोहित इत्यादि माना गया है। इस प्रकार वेदों के गुढ़ार्थ को समझने के लिये श्री अरविन्द्र ने एक नया मार्ग उपस्थित किया है।

(क्रमश:)

वेदों की ऋषिकाएँ

(गतांक से आगे)

ऋषि -मीमांसा

(१) ऋषि शब्द का अर्थ-

यह शब्द 'ऋषी गतौ' धातु से बना है। गतेस्त्रयोऽर्था:-ज्ञानं गमनं प्राप्तिश्च। अत: ऋषि वह है -जो अपने ज्ञान के अनुसार आचरण करता है, और वैसा बन जाता है, या अपने वांक्षित लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है।

निरुत्कार के अर्थ - 'साक्षात्कृत धर्माण ऋषयो बभूवु:।' नि:१-२० अतीन्द्रिय पदार्थोंका तपस्या द्वारा साक्षात करने वाले ऋषि हुवे हैं। 'तर्क एव ऋषि:'। १३-१२ उपरलिखित ऋषियों के अभाव में तर्क को ऋषि माना हैं।ऋषि शब्द के आदित्यरश्मियां,इन्द्रियां और प्राण अर्थ भी किये हैं।

अमर कोष में 'ऋषय:सत्यवचस:' जो सदासत्य बोलते हैं,और जिनके वचन सदा सत्य होते हैं-उन्हें ऋषि कहा गया है। स्वामी दयानन्द ने ऋषि शब्द के अर्थ इन के अतिरिक्त -सर्वस, सर्वव्यापकईश्वर, परमयोगी, वेदार्थ वेत्ता, महाविद्वान, अध्यापक अध्येता, कार्य सिद्धि प्राप्ति हेतु इत्यादि अनेक अर्थ किये हैं।

(२) वेद मन्त्रों के ऊपर लिखे हुए ऋषि-

क. पाश्चात विद्वान एकमत से,और कुछ भरतीय विद्वान् भी इन ऋषियों को मन्त्रों का कर्ता अर्थात् इन प्रयुक्त शब्दों का रचयिता मानते हैं। कुछ आधुनिक व्याख्याता ऋषिनामों को शीर्षक मानते हैं, और उनके अर्थो का मन्त्रार्थ से सम्बन्ध स्थापित करते हैं। वे इन्हें व्यक्ति, इन ऋषिनामों को धारण करने वाला बन कर ही - इन मन्त्रोंका द्रष्टा बनता है - ऋषयो मन्त्रार्थ द्रष्टार:'। घ. ऋषि सदा चेतन होगा, देवता जड़ भी हो सकता है।

(३)ऋषियों के सम्बन्ध में संक्षेप में ज्ञातव्य तथ्य-

१ कुलऋषि. ४५४ + ११ (ऋषि और देवता दोनों) ५२५ हैं। इनमें २१ ऋषिकाएं हैं।

२ मुख्य ऋषि, १ हैं - गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र, जमदग्नि, कश्यप, वसिष्ठ, अत्रि।

(४) वेद मन्त्रों में वर्णित ऋषि बनने के उपाय-

क. सबको कर्मानुसार नाना योनियों में भ्रमण करने वाला प्रभु ही मनुष्यों को ऋषि बनाता है। उस की कृपा के बिना ऋषि बनना संभव नही।

१. **'भूमिरसि ऋषकृन्मर्त्यानाम्'** (ऋक् १-३१-१६)

२. **'यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्'**

(ऋक् १०-१२५-५)

ख. धैर्यपूर्वक जनता का पालन पूरण करते हुवे,सबका मार्गदर्शन करनेवाला धीर, विप्र और ऋभु (प्रतिभाशाली) ही ऋषि बनता है।

' ऋषिर्विप्र: पुर एता जनानामृभुर्धीर: ।'

(ऋक् ९-८१-३)

ग. जो विप्र के दोष और कमियों को दूर करने के निमित्त,उनका सखा बनकर मनुष्य मात्र का हित चाहता और करता है, वही ऋषि है। '

ऋषि : स यो मनुहितो विप्रत्य रा वयत्स: ।'

(ऋक् १०-२६-५)विप्र कौन ? जन्मना जायते शुद्र: संस्कारैर्द्विर्ज उच्यते। विद्यया याति विप्रत्वं त्रिभि: श्रोत्रियलक्षणम् ॥

मनोहर विद्यालंकार,दिल्ली